भ्रमण के दौरान न्यूजीलैंड में घटित
किन्तु गाजियाबाद से निर्गत
दिसम्बर ६, २००७

सन्देश संख्या १२८

सम्यक् धार्मिकता

गुरु एवं कुरुबालन नामक एक शिष्य के मध्य बातचीत के दौरान यह सन्देश घटित हुआ । बहुत वर्षों पूर्व घटित एक घटना, एक उद्दीपक से गुरु की स्मृति में ताजी हो गई जो एक गहन सत्य को प्रकाशित करती है ।

स्वर्गीय सत्यचरण लाहिड़ी (शिवेन्दु के पिता) ने एक प्रश्न के उत्तर में एक बार कहा था : ''भीष्म जीवन भर कौरवों के पक्ष में निष्ठापूर्वक रहे और उनकी तरफ से धर्म के प्रतीक पाण्डवों के विरूद्ध युद्ध लड़े जबकि पाण्डवों के पक्ष में भगवान कृष्ण स्वयं थे । भीष्म अच्छी तरह जानते थे कि कृष्ण विभाजन रहित पूर्ण भगवत्ता हैं । इसलिए वे पूर्णरूपेण संशयरहित थे कि कौरव हारेंगे और उनका सर्वनाश हो जायेगा । फिर भी वे मृत्यु आने तक उनके पक्ष में बने रहे । यह समझदारी की ऊर्जा है, यही सच्चरित्र होना है और यही गहन धार्मिक होना है । विजय, सफलता या सत्ता की उनकी इच्छा नहीं थी । वे विकल्पों से पूर्णतया परे थे अर्थात् साक्षी–भाव में थे । वे ''निर्मन'' अवस्था में थे यानी कि स्वयं को निमित्तमात्र समझते थे और कभी भी वे निर्णायक (मन की धूर्त्ततापूर्ण चालबाजी) की भूमिका में नहीं रहे । इसीलिए जब वे अर्जुन द्वारा पराजित होकर बाणों की शय्या पर लेटे हुए मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे तब कृष्ण ने धर्म की मूर्त्ति कहे जाने वाले धर्मराज युधिष्ठिर सहित सभी पाण्डवों को धर्म जानने हेतु भीष्म के पास भेजा । अपनी समझदारी के अभाव में कई लोग इसे विसंगति मानते हैं ।''

विभेदकारी चित्तवृत्ति सही और गलत, अच्छा और बुरा, उचित और अनुचित की अवधारणाओं में फँसी होती है । कृष्ण सर्वव्यापी चैतन्य स्वयं हैं जो सर्वदा बिना किसी निष्कर्ष के केवल सत्य–दर्शन करते हैं । भीष्म में वे परम निर्विकल्पता पाते हैं जो गहन धार्मिकता है । यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि कृष्ण सर्वव्यापी चैतन्य स्वयं हैं, भीष्म ने कौरवों के पक्ष से युद्ध लड़ा क्योंकि परिस्थितियों ने उन्हें उसी स्थान पर रखा था । वे जानते थे कि उनका मरना निश्चित है । फिर भी वे कौरवों के पक्ष में रहे क्योंकि वे निमित्त (भगवत्ता के साधन) थे, न कि निर्णायक (भगवत्ता के शिक्षक) । वे अपनी भूमिका में स्थिरता से बने रहे और स्वार्थवश कभी भी उससे भागे नहीं । कौरवों के पक्ष में रहकर वे जीतेंगे या हारेंगे – इस द्वन्द्व से मुक्त थे । वे उचित के पक्ष में थे या अनुचित के – यह भी उनके लिए विचारणीय नहीं था । वे परम निर्विकल्पता की अवस्था में थे । जब वे अपनी पूरी क्षमता एवं ऊर्जा से युद्ध लड़ रहे थे तब भी उनका ''मैं–पना'' नहीं जगा और वे पूर्णरूपेण निष्प्रयोजन बने रहे । युद्ध के समय वे जीवन या मरण की चिन्ता नहीं कर रहे थे जैसा कि राजनेतागण करते हैं । राजनेतागण जैसे ही चुनाव में हारने की सम्भावना देखते हैं, वे अपना दल बदल लेते हैं (जिस समय सत्यचरण महाशय यह बात कर रहे थे, उस समय जगजीवन राम नाम के एक राजनेता के दल–बदल की घटना से भारतीय राजनीतिक परिदृश्य आन्दोलित था) । सत्यचरण ने कहा : ''भीष्म जगजीवन राम नहीं थे। वे वस्तुतः अत्यन्त धार्मिक थे और उनके लिए सफलता या असफलता का कोई महत्व नहीं था । भीष्म के कम प्रयोजनों या विकल्पों द्वारा निर्देशित नहीं थे, बल्कि निमित्त–अवस्था में होने के कारण थे । अर्जुन भी जब अपने श्रद्धेय पितामह भीष्म को अक्षम बना रहा था, तब वह भी निमित्त–अवस्था में ही था।''

''तब पाण्डवों को धर्म की शिक्षा देने में महान भीष्म से ज्यादा कौन सामर्थ्यवान था?''–सत्यचरण ने पूछा था ।

''भीष्म के अस्तित्व का एक दूसरा पहलू भी है । कौरवों के साथ उनका साहचर्य उस दुष्ट कुल के अस्थायी अस्तित्व के लिए भी आवश्यक था । बुराई भी तभी जीवित रहती है जब वह अच्छाई पर आधारित हो । झूठ का अस्थायी अस्तित्व भी नहीं रह सकता यदि सत्य उसका आधार न हो ।''

कई झूठे गुरूओं का भी अभ्यास–दिवस होता है क्योंकि वे लाहिड़ी प्रक्रिया और बाबाजी के नाम तले काम करते हैं जो वस्तुतः सत्य है । श्यामाचारण लाहिड़ी प्रक्रिया की प्रज्ञा के देदीप्यमान प्रकाश के आधार के अभाव में, पाखण्डपूर्ण एवं विरोधाभासपूर्ण क्षुद्र व्यक्तित्व वाले लोग कैसे गुरू के रूप में अपनी शरारत जारी रख सकेंगे ?

किन्तु जैसा कौरवों के प्रकरण में हुआ, लोभ एवं लाभ से अभिप्रेरित ऐसे गुरु तभी तक जीवित रह सकते हैं जब तक चैतन्य का पुनः उदय नहीं हो जाता जो मनुष्य में विभेदकारी चित्त अर्थात् ''मैं'' का सर्वथा नाश कर देता है । कृपया ध्यानपूर्वक सुनें : भगवत्ता के उदय यानी कि चैतन्य की जागृति के लिए विभेदकारी चित्त ''मैं'' की समाप्ति आवश्यक है । ज्ञान एवं अन्तर्दृष्टि के उदय होने पर किताबी जानकारी एवं विचार का कोई अर्थ नहीं ।

।। जय भीष्म, जय निर्विकल्पता ।।